पूर्वोत्तर प्रभा
(सिक्किम विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित अर्धवार्षिक शोध पत्रिका)
Journal Home Page: **http://supp.cus.ac.in/**

बौद्ध 'धम्मपदट्ठकथा' में अभिव्यक्त प्राचीन भारतीय समाज-पारिवारिक संरचना का स्वरूप

कृष्ण कुमार साह

पीएच.डी. शोधार्थी

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय

ईमेल- sahkrishna075@gmail.com

शोध सार : प्रस्तुत आलेख में प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ 'धम्मपदट्ठकथा' में अभिव्यक्त प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना के स्वरूप का अध्ययन किया गया है। शोध आलेख में सर्वप्रथम 'ग्रंथ परिचय' दिया गया है जिसके अंतर्गत त्रिपिटक में धम्मपदट्ठकथा के संकलन, स्थान तथा रचनाकार एवं रचना काल का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है। मूल आलेख का प्रारंभ प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना एवं उसकी परंपरा से किया गया है तत्पश्चात धम्मपदट्ठकथा में अभिव्यक्त पारिवारिक संरचना पर चर्चा की गई है। पारिवारिक संरचना में पहले 'धम्मपदट्ठकथा' में अभिव्यक्त परिवार में व्यक्ति के स्थान पर विचार किया गया है, तदुपरांत तत्कालीन संयुक्त परिवार एवं एकल परिवार के स्वरूप को उद्धरण के माध्यम से उजागर किया है। आलेख के अंत में शोध निष्कर्ष द्वारा पारिवारिक संरचना के कारणों एवं उसकी संभावनाओं को स्पष्ट किया गया है।

बीज शब्द : त्रिपिटक, धम्मपद, अट्ठकथा, धम्मपट्ठकथा, समाज, व्यक्ति, परिवार, संयुक्त परिवार, एकल परिवार, पारिवारिक संरचना, प्रव्रज्या, श्रमण आदि।

ग्रंथ परिचय : बौद्ध धर्म एवं दर्शन त्रिपिटक में समाहित है। त्रिपिटक कोई स्वतंत्र ग्रंथ न होकर पालि बौद्ध धर्म एवं दर्शन के ग्रंथों का समूह है, जिसे विषय के आधार पर तीन भागों में सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक में बाँटा गया हैं। इसमें सुत्तपिटक के अंतर्गत पाँच निकाय- दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुक्तनिकाय, अङ्गुत्तरनिकाय, खुद्दकनिकाय हैं। इन पाँचों निकायों के अंतर्गत अनेक वग्ग (वर्ग), सुत्त (सूत्र) एवं स्वतंत्र ग्रंथ समाहित हैं। इनमें खुद्दकनिकाय का विशेष महत्व है, जिसमें सुत्तों के संग्रह के साथ-साथ छोटे-बड़े स्वतंत्र ग्रंथ हैं। खुद्दकनिकाय में संग्रहित ग्रंथों की संख्या पन्द्रह हैं। यह निकाय सुत्तपिटक के अन्य चार निकायों से भिन्न है। इसमें मुख्य रूप से पद्यात्मक और कुछ गद्य-पद्य मिश्रित रचनाएँ मिलती हैं। भाषा और शैली की दृष्टि से भी इसके ग्रंथ अन्य निकायों से अलग एवं वैविध्य पूर्ण हैं। इन स्वतंत्र ग्रंथों में धम्मपद का विशेष स्थान है। धम्मपद बौद्ध वांड्मय की अमूल्य निधि है। इसमें समय-समय पर बुद्ध द्वारा दिए गए वचनों का संकलन है। बुद्ध ने परिनिर्वाण के बाद लगभग पैंतालीस वर्षों तक घूम-घूमकर उपदेश दिया। ये उपदेश अनेक कथानकों पर आधारित हैं एवं अनेक श्रोताओं को लक्ष्य करके कहे गए हैं। ये उपदेश बौद्ध धर्म के मूल हैं। बौद्ध धर्म एवं दर्शन का मूल सिद्धांत संक्षिप्त रूप में इसमें समाहित है।

'धम्मपदट्ठकथा' इसी लोक प्रसिद्ध ग्रंथ 'धम्मपद' पर लिखी गई अट्ठकथा है। इसे धम्मपद की व्याख्या कही जा सकती है। इसमें धम्मपद के प्रत्येक श्लोक को कथा के माध्यम से समझाया गया है। "धम्म शब्द से धर्म, अनुशासन, नियम आदि का तात्पर्य लिया जाता है और पद का अर्थ वक्तव्य या पथ से किया जाता है। इस प्रकार धम्मपद का अर्थ सत्य-सबंधी वक्तव्य या सत्य का मार्ग है।"[1]

अट्ठकथा को 'अत्थवण्णना', अत्थसवण्णना' एवं 'वण्णना' भी कहा जाता है। त्रिपिटक में वर्णित अट्ठकथाओं के प्राचीन रूप को निद्देस एवं विभंग अट्ठकथा कहा जाता है। पालि अट्ठकथा से आशय अर्थ की कथाएँ, अर्थ की व्याख्या है। दीघनिकाय की अट्ठकथा

'सुमंगलविलासिन' की लक्खणसुत्तवण्णना में इसे स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'अत्थकथं' ति अत्थयुत्तं कथं।' अतः जिस अर्थ में बुद्ध ने उपदेश दिया, उसे बताना तो अट्ठकथाओं का उद्देश्य है ही, परंतु सहायतार्थ वे उस परिस्थिति को, संदर्भ को, भी स्पष्ट करती हैं, जिसमें बुद्ध ने कभी किसी को कोई उपदेश दिया।"[2]

धम्मपदट्ठकथा में धम्मपद के 423 गाथाओं पर कथा है। ये कथाएँ जातक कथाओं के समान ही हैं। गाथाओं के संशय को दूर करने के लिए जातक कथा के समान ही धम्मपदट्ठकथा में गाथाओं की व्याख्या, पच्चूप्पन्नवत्थु, अतीतवत्थु, वैयाकरण एवं अनुसंधि दी हुई है। धम्मपदट्ठकथा की प्रत्येक कथा के पहले ही यह लिखा हुआ है कि बुद्ध ने यह गाथा एवं कथा अमुक समय, अमुक स्थान में, अमुक व्यक्ति को, अमुख घटना के संदर्भ में कही थी। इसके बाद कथा प्रारंभ होती है और कथा का अंत गाथाओं के साथ होता है। जिसमें स्वतः ही गाथाओं की व्याख्या हो जाती है। कथा के उपसंहार में यह कहा जाता है कि इस कथा एवं गाथा से हजारों व सैंकड़ों श्रोताओं को धर्म लाभ मिला तथा भिक्षुओं को उपसंपदा एवं अर्हत्त्व आदि की प्राप्ति हुई। इसकी अनेक कथाओं में कथा उत्पन्न होने के कारण से पूर्व अतीत की कथा कही गई है। बुलिंगम ने अपनी पुस्तक 'बुद्धिस्ट लीजेंडस' की भूमिका में लिखा है कि "वैदिक अथवा संस्कृत टीकाओं में कथा के उल्लेख का प्रयोजन, शब्दों और मूलपाठ की व्याख्या करना तथा उसके अर्थ को कथा के द्वारा उदाहरण देकर स्पष्ट करना होता है, और कथाभाग गौण होता है, किंतु बौद्ध अट्ठकथाओं में यह बिल्कुल उल्टा हो जाता है।"[3] धम्मपदट्ठकथा के रचनाकार आचार्य बुद्ध घोष माने गये हैं। धम्मपदट्ठकथा के अंत में परिचयात्मक उपसंहार में स्पष्ट रूप से आचार्य बुद्धघोष को इस अट्ठकथा का रचयिता कहा गया है-

"विपुलविसुद्धबुद्धिना बुद्धघोस इति

कतायं धम्मपदट्ठकथा।"[4]

जी. पी. मललसेकर अपनी पुस्तक 'दि पालि लिटरेचर ऑफ़ सीलोन' में 'पूजावलिय' का उल्लेख करते हुए कहा है कि 'आचार्य बुद्धघोष ने धम्मपदट्ठकथा राजा सिरिनिवास और मंत्री महानिगम की प्रार्थना करने पर लिखा था।'[5] पाश्चात्य विद्वान बुलिंगम ने धम्मपदट्ठकथा के 'नरककुण्ड' की कथा का अंतःसाक्ष्य देते हुए इसका समय 450 ई. निश्चित किया है।[6] बुलिंगम ने यह साक्ष्य बाल वग्ग के अन्यतर पुरूष की कथा के आधार पर दिया है। डॉ शिवचरणलाल जैन धम्मपदट्ठकथा को 425 ई. से 430 ई. के बीच की रचना मानते हैं।[7] धम्मपदट्ठकथा में व्याख्या का महत्व गौण और कथा प्रमुख हो गई है। यह कथात्मक अट्ठकथाओं के समान नाम और अकार मात्र की अट्ठकथा है। वास्तव में यह पौराणिक एवं लोककथाओं का वृहत संग्रह है। इसमें प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना का स्वरूप प्राप्त होता है।

मूल आलेख

भारतीय सामाजिक व्यवस्था विश्व के प्राचीन सामाजिक व्यवस्थाओं में से एक है। इसका प्रादुर्भाव हड़प्पा सभ्यता से माना जाता है। वर्तमान भारतीय समाज का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह वैदिक, श्रमण, यवन, हूण, इस्लाम एवं पाश्चात्य आदि सामाजिक व्यवस्था का रूप ही है। सैन्धव वैदिक सभ्यता से विकसित भारतीय व्यवस्था का आरंभिक स्वरूप संगठनात्मक बहुत कुछ कबीला आकार ही का था। धीरे-धीरे मनुष्य के विकासात्मक प्रवृत्ति के कारण कबीलई जीवन का यह स्वरूप सामाजिक व्यवस्था का आकार ले लिया। सापेक्ष में कहें तो भारतीय समाज अपनी आरंभिक अवस्था से अनेक परिवर्तनों और मोड़ों से होता हुआ ऊपर उठा और सामाजिक नियमों के बंधनों में बंधकर सुगठित हो गया।

भारतीय समाज में प्रारंभ में ही उच्च नैतिकता एवं सभी धर्मों से आचार को प्रथम स्थान दिया। सभी के लिए चिंतन करना और सभी के लिए कर्म करना, सभी के भाग का हिस्सा देना भारतीय आरंभिक समाज की मूल कल्पना रही।

"सस्तुमाता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्त्रू विश्वप्तिः।

संसंतु सर्वो ज्ञातयः सस्त्वभमभितो जनः।।"[8]

व्यक्ति, परिवार जाति, वर्ण व्यवस्था, श्रमण व्यवस्था, विवाह संस्था, धार्मिक संस्था, सामाजिक नैतिकता एवं मूल्यों आदि से सामाजिक व्यवस्था का निर्माण हुआ। मानव, प्रकृति एवं विश्व कल्याण की भावना से विकसित भारतीय सामाजिक व्यवस्था में धीरे-धीरे विकृति आने लगी। ई. पूर्व. छठी शताब्दी में महावीर और गौतम बुद्ध के आगमन के पश्चात इन सामाजिक व्यवस्थाओं में अत्यधिक बदलाव हुआ। गौतम बुद्ध के समकालीन सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु वैदिक धर्म से इतर नवीन धर्म का संदेश दिया। इसके लिए बुद्ध ने तत्कालीन उत्तर भारत के बहुसंख्यक लोगों को उपदेश दिया। उनसे प्रभावित होकर अत्यधिक लोग बुद्ध के अनुयायी हो गए एवं बुद्ध के विचारों एवं उपदेश को देश के अन्य हिस्सों तक पहुँचाया। बुद्ध ने अपने उपदेश को समझाने के लिए विविध कथाओं को माध्यम बनाया, जो बुद्ध के जीवन से ही जुड़ी हुई थीं। परिवर्तितकाल में इन्हीं कथाओं को लेकर अट्ठकथाएँ लिखी गई, जो धार्मिक साहित्य के अंतर्गत आते है। इन अट्ठकथाओं में धम्मपदट्ठकथा का विशेष स्थान है। धम्मपदट्ठकथा में तत्कालीन पारिवारिक संरचना का स्वरूप स्पष्ट देख जा सकता है।

पारिवारिक संरचना में व्यक्ति का विशेष महत्व होता है। व्यक्ति समाज एवं परिवार की पहली इकाई है। विभिन्न व्यक्तियों एवं वर्गों के पारस्परिक मेल से परिवार फिर समाज का निर्माण होता है। परिवार का मुख्य कार्य है वह व्यक्ति का समाजीकरण करता है। वह व्यक्ति को जैविक प्राणी से सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करता है। इस संबंध में लॉक का कहना है कि "परिवार एक ऐसी अनौपचारिक संस्था है जो व्यक्ति के सभी व्यवहारों को नियंत्रित कर सकता है।"[9] परिवार प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति या दायित्व को निश्चित करता है और उसकी विषमताओं की रक्षा भी करता है।

सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति का होना अनिवार्य है। व्यक्ति स्वयं को नियमित, व्यवस्थित एवं सुचारु रूप से चलाने के लिए समाज का निर्माण करता है और फिर समाज व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करता है। धम्मपदट्ठकथा में तत्कालीन समाज में व्यक्ति की स्थिति का पर्याप्त उल्लेख हुआ है। परिवार में व्यक्ति की पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन, सास-ससुर, पुत्र-वधु आदि विभिन्न भूमिकाएँ होती थी। व्यक्ति अनेक तरह के पारिवारिक बंधन में बंधा हुआ था। पारिवारिक बंधनों में रहकर ही व्यक्ति को अपने दायित्व का निर्वाह करना होता था। व्यक्ति को परिवार, कुल और समाज को ध्यान में रखकर कोई निर्णय लेना होता था। समाज में स्त्री और पुरुष की स्थिति समान नहीं थी। समाज में पुरुषों का वर्चस्व था परंतु पुरुष को भी सामाजिक बंधनों में बंध कर निर्णय लेना होता था। व्यक्ति को सामाजिक बंधनों के अनुरूप संतान की देख-रेख करना उसे शिक्षित करने की जिम्मेदारी होती थी। विवाह करना हो या प्रव्रज्या धारण करना हो, कोई महत्वपूर्ण निर्णय लेना हो उसमें माता-पिता या अपने से बड़े की सहमति आवश्यक थी। धम्मपदट्ठकथा में अनेक ऐसी कथाएँ हैं जहाँ माता-पिता की सहमति से ही व्यक्ति को प्रव्रज्या धारण करने दिया जाता था। बिना माता-पिता की अनुमति के व्यक्ति को प्रव्रज्या धारण करने का अधिकार नहीं था। 'सुन्दरसमुद्दत्थेरवत्थु' की कथा में सुन्दरसमुद्र नामक कोई कुलपुत्र शास्ता का धर्मश्रवण सुन उससे प्रभावित होकर उसी समय प्रव्रजित होना चाहा, तथागत बुद्ध ने उसे यह कहकर मना कर दिया कि माता-पिता के अनुमति के बिना मैं प्रव्रजित नहीं करता। यह सुनकर वह घर जाकर अपने माता-पिता से प्रव्रजित होने की अनुज्ञा ले आया और प्रव्रजित हुआ। "मातापितूहि अननुञ्ञतं तथागत न पब्बाजेन्ती" ति सुत्वा, गेहं गन्त्वा, रट्ठपालकुलपुत्तादयो विय महन्तेन वायामेन मातापितरो अनुजानापेत्वा सत्थु सन्तिके पब्बजित्वा लद्धूपसम्पदो।"[10]

परिवार समाज की पहली संस्था है। परिवार से आशय 'मनुष्य जहाँ मुख्यतः रक्त संबंध से जुड़े व्यक्ति एक साथ निवास करते हैं। परिवार को भारतीय समाज में सबसे छोटी संरचनात्मक इकाई माना गया है। व्यक्ति समाज की पहली इकाई है उसी से परिवार का निर्माण होता है,

इसलिए व्यक्ति को परिवार का जनक कहा गया है। परिवार का निर्माण, विवाह नामक सामाजिक व्यवस्था द्वारा होता है। विवाह में स्त्री-पुरुष (दाम्पत्य) एक सूत्र बंधन में बंधते हैं और स्वतः ही रिश्ते नातेदारी की व्यवस्था बन जाता है। भारतीय समाज मूलरूप से संयुक्त परिवार का ही समाज है ,कुछ समाजशास्त्रियों के अनुसार भारतीय समाज का मतलब होता है- संयुक्त परिवार। परिवार का मतलब ही संयुक्त परिवार।"[11] दो या दो से अधिक पीढ़ियाँ जहाँ निवास करती है उसे संयुक्त परिवार कहा गया है। संयुक्त परिवार में पितृ वंशीय, मातृ वंशीय एवं सजातीय सदस्य एक साथ निवास करते हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में संयुक्त परिवार की व्यवस्था प्रारंभिक काल से ही देखने को मिलती है। बौद्ध कालीन समाज में संयुक्त परिवार का जो रूप प्राप्त होता है उसे भी भिन्न-भिन्न ढंग से देखा जा सकता है। संयुक्त परिवार लघु, मध्य एवं दीर्घ तीनों आकार के होते थे। धम्मपदट्ठकथा में तीनों प्रकार के संयुक्त परिवारों का उल्लेख मिलता है।

राजाओं के परिवार दीर्घ आकर के होते थे। परिवार का विभाजन सैनिक परिवार, योद्धाओं का परिवार, भिक्षुओं का परिवार आदि रूप में भी होता था। धम्मपदट्ठकथा के सारिपुत्र स्थाविर कथा में ऐसे परिवारों का उल्लेख मिलता है। राजा अर्थात क्षत्रीय का परिवार योद्धाओं या सैनिकों का परिवार कहलाता था उदाहरण द्रष्टव्य है- "रञ्ञोपन अपरे पि तयो पुत्ता अहेंसु। जेट्ठस्स पञ्चयोध सतानि परिवारानि मज्मिस्स तीणि, कनिट्ठस्स द्वे। तते- 'मयं पि भातिकं भोजेसस्मा। (अर्थात राजा के तीन पुत्र थे। उनमें बड़े के पास पाँच सौ सैनिक परिवार थे, मझले के पास तीन सौ सैनिक परिवार थे और छोटे के पास दो सौ सैनिक परिवार थे। तीनों भाइयों ने सोचा भोजन के लिए निमंत्रण देंगे। इसी कथा में आगे ज्ञात होता है कि तीनों भाइयों के सैनिक परिवार में ही भांडगारिक एवं आय-व्यय लेखकों का भी एक दीर्घ परिवार था। इसकी संख्या इतनी अधिक है कि यह अतिशयोक्ति जान पड़ती है। राजा के तीनों पुत्रों ने भिक्षु संघ के एक लाख भिक्षुओं को निमंत्रण दिया जिसके भोजन की व्यवस्था तीनों भाइयों के भांडागारिक एवं आय-व्यय लेखकों ने किया। "तेसं पण तिण्णं पि एको व ओयुत्तको, तस्स

द्वादसनहुता पुरिस परिवारा।"[12] (अर्थात तीनों भाइयों का एक ही भांडागारिक एवं आय-व्यय आलेख था। उसके परिवारों की संख्या एक लाख बीस हजार था।)

धम्मपदट्ठकथा में संयुक्त परिवार का जो उल्लेख प्राप्त होता है उनमें अधिकांश, नगर श्रेष्ठी के परिवार है। नगरश्रेष्ठी को गृहपति भी कहा जाता है। धम्मपदट्ठकथा ही नहीं अन्य बौद्ध साहित्य में ऐसे गृहपतियों की कथा अनेकों बार आयी हैं। जिसमें संयुक्त परिवार एवं कुल संबंधित जानकारी विस्तार से दिया हुआ है। धम्मपदट्ठकथा के 'विसाखावत्थु' की कथा में नगर श्रेष्ठी की पुत्री विशाखा के परिवार एवं कुल के लोगों की संख्या का उल्लेख विस्तार से मिलता है - "तस्मिं च समये मेण्डको गहपति तस्मिं नगरे पञ्चन्नं महापुञ्ञानं जेट्टको हुत्वा सेट्ठिट्ठानं करोति। नाम- मेण्डको सेट्ठि, चन्दपदुमा नाम तस्सेव जेट्ठकभरिया, तस्सेव जेट्ठकपुत्तो धनञ्जयो नाम, तस्स भरिया सुमनादेवी नाम, मेण्डकसेट्ठिनो दासो पुण्णो नामा ति।"[13] (अर्थात उस समय मेण्डक गृहपति पाँच महापुण्यकर्ताओं में ज्येष्ठ (मुख्य) होकर नगर में 'श्रेष्ठी' का सम्मान प्राप्त किया हुआ था। पाँच महापुण्यकर्ताओं के नाम (मेण्डक श्रेष्ठी, चन्द्रप्दुमा नाम की श्रेष्ठी की पत्नी, उसी श्रेष्ठी का ज्येष्ठपुत्र, धनञ्जय की पत्नी का नाम सुमन देवी, श्रेष्ठी के भृत्य का नाम पूर्ण था।) परिवार में माता-पिता के संपत्ति का अधिकारी पुत्र ही होता था। इसी कथा में पुत्री के विवाह के अवसर पर दहेज रूप में उसे अधिक संपत्ति दिये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

राज परिवारों का वर्णन भी धम्मपदट्ठकथा में मिलता है। ऐसे परिवार आकार में अत्यधिक बड़े होते थे एवं ये राजपरिवार आपस में जुड़े हुए भी होते थे। किसी उत्सव या मांगलिक अवसर पर ये राजपरिवार एक साथ मिलकर उत्सव मनाते थे। प्रकीर्णक वग्ग की 'वज्जिपुत्रकभिक्षुवस्तु' की कथा में ऐसे राजपरिवारों का उल्लेख हुआ है। वज्जिदेश का एक राजपुत्र जब वज्जिराज्य का अधिकार छोड़ प्रव्रजित हुआ तो नगरवासी एवं उसके परिवार वासियों ने भव्य उत्सव मनाया। जिसमें वैशाली के समस्त नगरवासी एवं अनेक राजपरिवारों

के लोग सम्मिलित हुए। "वेसालियं सत्त राजसहस्सानि सत्त राजसतानि सत्त राजानो, तत्तका एव च नेसं उपराजसेनापति आदयो"[14] (अर्थात उस उत्सव में वैशाली के साधारण जनता तो सम्मिलित हुए ही, साथ ही वहाँ सात हजार सात सौ सात परिवारों के लोग, उतने ही उपराजपरिवार तथा सेनापतियों आदि के परिवार भी सम्मिलित हुए।)

माता-पिता और संतान से एकल परिवार का निर्माण होता है। यह परिवार का लघुरूप है। यहाँ घर के सदस्यों की संख्या कम होती है। भारतीय पारिवारिक परिकल्पना आरंभ से ही संयुक्त परिवार की रही है। बौद्धकालीन समाज में एकल परिवार का स्वरूप बहुत कम दिखाई पड़ता है। धम्मपदट्ठकथा में तत्कालीन पारिवारिक जीवन का जो रूप मिलते हैं उसमें संयुक्त परिवार का उल्लेख अधिक हुआ है उसकी तुलना में एकल या छोटे आकार के परिवार का वर्णन बहुत कम मिलता है। इसमें कुछ ऐसी कथाएँ अवश्य मिलती है जिसमें छोटे आकार के परिवार का उल्लेख हुआ है।

इसी तरह की कथा नाग वग्ग के 'परिजिण्णब्राह्मणपुत्तवत्थु' में हैं। श्रावस्ती में एक धनी ब्राह्मण अपने परिवार के साथ रहता था, जिसके पास आठ लाख संपत्ति थी। उसके चार पुत्र थे उसने अपने चारों पुत्रों का विवाह कर चार लाख संपत्ति चारों पुत्रों में बाँट दी, शेष संपत्ति स्वयं अपने पास रखा। कुछ समय बद उसकी पत्नी का देहांत हो गया। इससे ब्राह्मण के पुत्रों को लगा कि पिता दूसरी शादी कर लेंगे तो दूसरी माता से जो संतान पैदा होगी सारी संपत्ति उन्हीं की हो जाएगी। इसके लिए संपत्ति की लालच में वे पिता की सेवा करने लगे। "ति ते तं पणीतेहि घासच्छादनादीहि उपट्ठहन्ता हत्थ-पाद-स्म्वाहनादीनि करोन्ता उपट्ठहित्वा"[15] (पिता को अपने अनुकूल बनाने के लिए वे स्निग्ध आदि भोजन से एवं हाथ-पैर दबाकर उनकी सेवा करने लगे।) चारों पुत्र एक-एक करके पिता की सेवा करने के बहाने सारी संपत्ति उनसे लेकर उनसे अलग रहने लगते हैं, और उनकी सेवा नहीं करते हैं।

स्पष्ट है पिता द्वारा अपने आने वाले पीढ़ियों के लिए संपत्ति को संग्रहीत करने से पारिवारिक ढांचे बदलने लगा था। संपत्ति का लोभ एवं स्वार्थ का भाव परिवार के लोगों के अंदर धीरे-धीरे बढ़ने लगा था। इससे पारिवारिक विघटन भी शुरू हो गया था। इस प्रकार के पारिवारिक विघटन वर्तमान समाज में पर्याप्त देखे जा सकते हैं। तत्कालीन समाज में भी धन की लोभ में बच्चे माता-पिता की सेवा करते और धन प्राप्त होने के बाद उन्हें ऐसे ही छोड़ देते थे। परंतु उस समय इसे रोकने के लिए समाज ने कुछ ऐसे विधान थे कि अगर कोई माता-पिता की संपत्ति का उपभोग करता हुआ माता-पिता की सेवा नहीं करता उसे दण्ड दिया जाता था। "तेन च समयेन मनुस्सानं वत्तं होति- "यो मातापितूनं सन्तकं खादन्तो मातापितरो न पोसेति सो मारेतब्बो"[16] (अर्थात उस समय मनुष्य समाज का विधान था कि कोई माता-पिता के संपत्ति का उपभोग करते हुए माता-पिता की सेवा नहीं करता था उसकी हत्या कर दी जाती थी।) अतः इस भय से पुत्रों को माता-पिता की सेवा करना अनिवार्य हो जाता था।

अतः स्पष्ट है कि बुद्ध द्वारा प्रसारित यह श्रमण व्यवस्था जिसमें व्यक्ति प्रव्रज्या धारण कर संघ में सम्मिलित होकर स्वयं को समाज से अलग कर लेना वास्तव में सामाजिक एवं पारिवारिक बंधनों से ही मुक्ति की ओर संकेत करता है। बुद्ध का उपदेश भी एक तरह वैयक्तिक स्वतंत्रता की ही बात करता है। बुद्ध पूर्व कालीन भारतीय समाज में व्यक्ति सामाजिक बंधनों में इस तरह जकड़ा हुआ था, उसकी कोई स्वतंत्रता ही नजर नहीं आ रही थी। व्यक्ति पारिवारिक नियम एवं सामाजिक नियम के अनुरूप चलने में विवश था। यह विवशता इतनी बढ़ गई थी व्यक्ति का स्वयं का अस्तित्व लगभग लुप्त हो गया था। व्यक्ति को प्रत्येक निर्णय समाज एवं परिवार के दायरे में रहकर लेना पड़ता था। बुद्ध का अपने परिवार से पलायन को भी इस रूप में देखा जा सकता है। सारी सुख-सुविधाएँ होने के बावजूद बुद्ध को परिवार में वैयक्तिक स्वतंत्रता नहीं थीं। यह स्वतंत्रता की चाह उन्हें पलायन के लिए मजबूर करती है। उनका उपदेश 'बुद्ध शरणम् गच्छामि, संघम् शरणम् गच्छामि' भी तत्कालीन सामाजिक एवं पारिवारिक व्यवस्था से मुक्ति का ही संदेश देता है। यह मुक्ति व्यक्ति का

सामाजिक एवं पारिवारिक व्यवस्था से मुक्त होने का ही है। बुद्ध का चिंतन भी सामाजिक एवं पारिवारिक व्यवस्था में व्यक्ति के अस्तित्व की तलाशना ही जान पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध सामाजिक एवं पारिवारिक व्यवस्था में व्यक्ति के अस्तित्व की तलाश कर रहे थे और संघ बनाकर स्वयं को अलग करना ही उसका उत्तर था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. सिंह,डॉ. महेंद्रनाथ, *बौद्ध तथा जैन धर्म : धम्मपद और उत्तराध्ययन सूत्र एक तुलनात्मक अध्ययन*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, (संस्करण : 1990), पृ.- 16
2. उपाध्याय डॉ. भरत सिंह, *पालि साहित्य का इतिहास*, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, (संस्करण : 2013), पृ.- 599
3. बुलिंगम ई. डब्लू., बुद्धिस्ट लीजेंडस, भूमिका से, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, (संस्करण : 1921), पृ- 14
4. संपा. डॉ. परमानन्द सिंह, अनु. स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, धम्मपदट्ठकथा, चतुर्थ भाग-4, निगमनकथा, बौद्ध आकर ग्रंथमाला, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, (संस्करण : 2000), पृ.- 2098
5. डॉ. जी. पी. मललसेकर, दि पालि लिटरेचर ऑफ़ सीलोन, एम. डी. गुनासेना एंड को. लिमिटेड, कोलोम्बो, (संस्करण : 1958), पृ.- 96
6. ई. डब्लू. बुलिंगम, बुद्धिस्ट लीजेंडस, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, (संस्करण : 1921), भाग- 5, कथा 1
7. डॉ. शिवचरणलाल जैन, आचार्य बुद्धघोष और उनकी अट्ठकथाएँ, अल्पना प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, (संस्करण : 1968), पृ.- 394
8. ऋग्वेद, मं. 7, सूत्र 55

9. Prabhu, Pandharinath H, (Burgess and locke), Hindi Social organization, Poupular Prakashan PVT. LTD. (Edition: 2010) pg.- 284
10. संपा. डॉ. परमानन्द सिंह, अनु. स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, धम्मपदट्ठकथा, चतुर्थ भाग-4, बौद्ध आकर ग्रंथमाला, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, (संस्करण : 2000), पृ.- 2030
11. दोषी, एस.एल, जैन, पी.सी., भारतीय समाज : संरचना और परिवर्तन, भारत पब्लिशिंग हाउस, (संस्करण: 2017) पृ.- 193
12. संपा. डॉ. परमानन्द सिंह, अनु. स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, धम्मपदट्ठकथा, चतुर्थ भाग-1, बौद्ध आकर ग्रंथमाला, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, (संस्करण : 2000), पृ.-भाग- 1, पृ.- 144
13. वही, पृ.- 530
14. वही, भाग-4 पृ.-1681
15. वही, पृ.-1742
16. वही, पृ.- 174